

श्रीमद्भगवद्गीता द्वितीय अध्याय श्लोक 54-72

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।

स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत ब्रजेत किम्॥2.54॥

अर्जुन बोले- हे केशव ! परमात्मामें स्थित स्थिर बुद्धिवाले मनुष्यके क्या लक्षण होते हैं? वह स्थिर बुद्धिवाला मनुष्य कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है?

श्री भगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥2.55॥

श्रीभगवान् बोले - हे पृथानन्दन ! जिस कालमें साधक मनोगत सम्पूर्ण कामनाओंका अच्छी तरह त्याग कर देता है और अपने-आपसे अपने-आपमें ही सन्तुष्ट रहता है, उस कालमें वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥2.56॥

दुःखोंकी प्राप्ति होनेपर जिसके मनमें उद्वेग नहीं होता और सुखोंकी प्राप्ति होनेपर जिसके मनमें स्पृहा नहीं होती तथा जो राग, भय और क्रोधसे सर्वथा रहित हो गया है, वह मननशील मनुष्य स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्राप्य शुभाशुभम्।

नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।2.57।।

सब जगह आसक्तिरहित हुआ जो मनुष्य उस-उस शुभ-अशुभको प्राप्त करके न तो अभिनन्दित होता है और न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित है।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।2.58।।

जिस तरह कछुआ अपने अङ्गोंको सब ओरसे समेट लेता है, ऐसे ही जिस कालमें यह कर्मयोगी इन्द्रियोंके विषयोंसे इन्द्रियोंको सब प्रकारसे समेट लेता (हटा लेता) है, तब उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित हो जाती है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।

रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।।2.59।।

निराहारी (इन्द्रियोंको विषयोंसे हटानेवाले) मनुष्यके भी विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, पर रस निवृत्त नहीं होता। परन्तु इस स्थितप्रज्ञ मनुष्यका तो रस भी परमात्मतत्त्वका अनुभव होनेसे निवृत्त हो जाता है।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥2.60॥

हे कुन्तीनन्दन! (रसबुद्धि रहनेसे) यत्न करते हुए विद्वान् मनुष्यकी भी प्रमथनशील इन्द्रियाँ उसके मनको बलपूर्वक हर लेती हैं।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।

वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥2.61॥

कर्मयोगी साधक उन सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें करके मेरे परायण होकर बैठे; क्योंकि जिसकी इन्द्रियाँ वशमें हैं, उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।

सङ्गात् संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥2.62॥

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥2.63॥

विषयोंका चिन्तन करनेवाले मनुष्यकी उन विषयोंमें आसक्ति पैदा हो जाती है। आसक्तिसे कामना पैदा होती है। कामनासे क्रोध पैदा होता है। क्रोध होनेपर सम्मोह (मूढ़भाव) हो जाता है। सम्मोहसे स्मृति भ्रष्ट हो जाती है। स्मृति भ्रष्ट होनेपर बुद्धिका नाश हो जाता है। बुद्धिका नाश होनेपर मनुष्यका पतन हो जाता है।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥2.64॥

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥2.65॥

वशीभूत अन्तःकरणवाला कर्मयोगी साधक रागद्वेषसे रहित अपने वशमें की हुई इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंका सेवन करता हुआ अन्तःकरणकी निर्मलता को प्राप्त हो जाता है। निर्मलता प्राप्त होनेपर साधकके सम्पूर्ण दुःखोंका नाश हो जाता है और ऐसे शुद्ध चित्तवाले साधककी बुद्धि निःसन्देह बहुत जल्दी परमात्मामें स्थिर हो जाती है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥2.66॥

जिसके मन-इन्द्रियाँ संयमित नहीं हैं, ऐसे मनुष्यकी व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं होती और व्यवसायात्मिका बुद्धि न होनेसे उसमें कर्तव्यपरायणताकी भावना नहीं होती। ऐसी भावना न होनेसे उसको शान्ति नहीं मिलती। फिर शान्तिरहित मनुष्यको सुख कैसे मिल सकता है?

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥2.67॥

अपने-अपने विषयोंमें विचरती हुई इन्द्रियोंमेंसे एक ही इन्द्रिय जिस मनको अपना अनुगामी बना लेती है, वह अकेला मन जलमें नौकाको वायुकी तरह इसकी बुद्धिको हर लेता है।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥2.68॥

इसलिये हे महाबाहो ! जिस मनुष्यकी इन्द्रियाँ इन्द्रियोंके विषयोंसे सर्वथा निगृहीत (वशमें की हुई) हैं, उसकी बुद्धि स्थिर है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥2.69॥

सम्पूर्ण प्राणियों की जो रात (परमात्मासे विमुखता) है, उसमें संयमी मनुष्य जागता है, और जिसमें सब प्राणी जागते हैं (भोग और संग्रहमें लगे रहते हैं), वह तत्त्वको जाननेवाले मुनिकी दृष्टिमें रात है।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।

तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥2.70॥

जैसे सम्पूर्ण नदियोंका जल चारों ओरसे जलद्वारा परिपूर्ण समुद्रमें आकर मिलता है, पर समुद्र अपनी मर्यादामें अचल प्रतिष्ठित रहता है ऐसे ही सम्पूर्ण भोग-पदार्थ जिस संयमी मनुष्य को विकार उत्पन्न किये बिना ही उसको प्राप्त होते हैं, वही मनुष्य परमशान्तिको प्राप्त होता है, भोगोंकी कामनावाला नहीं।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।

निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥2.71॥

जो मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंका त्याग करके स्पृहारहित, ममतारहित और अहंकाररहित होकर आचरण करता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।

स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥2.72॥

हे पृथानन्दन! यह ब्राह्मी स्थिति है। इसको प्राप्त होकर कभी कोई मोहित नहीं होता। इस स्थितिमें यदि अन्तकालमें भी स्थित हो जाय, तो निर्वाण (शान्त) ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है।